

# मेरे सपनों का जोश खत्म हो गया है और मेरी लड़ाई किसी से भी नहीं रह गयी है

आशीष त्रिपाठी

समकालीन हिन्दी जगत इन दिनों कवियों, कथाकारों और आलोचकों की नयी पीढ़ी के रचनात्मक परिणामों के सम्मुख खड़ा है। दो पीढ़ियों के बीस से अधिक कवियों के कविता संग्रह गत दो वर्षों में प्रकाशित हुए हैं। ऐसे में प्रत्येक कवि की निजी रचनात्मकता और पीढ़ी के काव्य रुझानों को मुकम्मल तौर पर देख पाना सम्भव हो पा रहा है। इस आलेख में हम नब्बे के दशक में सक्रिय हुए और उभरे तीन कवियों के पहले कविता संग्रहों पर बात कर रहे हैं। ये कवि हैं पंकज राग, तुषार धवल और रविकांत।

पंकज राग का कविता संग्रह 'यह भूमंडल की रात है' अनेक कारणों से हमारा ध्यान खींचता है। पंकज राग इतिहास के विद्यार्थी हैं। उन्होंने पेशेवर इतिहासकार की तरह भी कार्य किया है। स्वाभाविक है कि उनकी इस रुचि और सम्बद्धता ने उनकी कविता में अपनी जगह बनायी है। संग्रह में उनकी दोनों लम्बी कविताओं 'दिल्ली : शहर दर शहर' और '1857 के डेढ़ सौवें वर्ष में' की आंतरिक संरचना में इतिहास अपनी सम्पूर्णता में उपस्थित है — तथ्यों के वर्णन, विवेचन और व्याख्या में भी और इतिहासबोध के अपेक्षाकृत अधिक जटिल रूप में भी। इतिहास के तथ्यों, घटनाओं, वैचारिक मतभेदों और भिन्न दृष्टियों के बीच मौजूद तनाव से ही इन कविताओं को यह आकार मिला है। कहना न होगा कि इन कविताओं की मूल सृजनवस्तु (माटी) इतिहास ही है। परंतु देखने पर यह बात ऊपरी तौर पर जितनी आसान मालूम होती है, भीतरी तौर पर उतनी ही कठिन है। कविता में 'इतिहास' का उपयोग इतना सुविधाजनक भी नहीं है। उपन्यास जैसी विधाओं में इतिहास से संवाद की एक परम्परा मौजूद है। हालांकि वहां भी उसके सर्जनात्मक उपयोग पर सवाल कम नहीं हैं, फिर भी उपन्यास की 'कथात्मकता' में 'इतिहास' की 'तथ्यात्मकता' को समाहित कर लेने की क्षमता स्वाभाविक रूप से ज्यादा मौजूद रही है। उपन्यास और इतिहास लेखन दोनों की तकनीक में 'एकरेखीयता' का तत्व दोनों को ज्यादा नजदीक लाता है। उपन्यासों में इतिहास के साथ एक सर्जनात्मक और कल्पनाशील सम्बंध की अनेक झांकियां हिन्दी में मौजूद हैं। कविता इतिहास के बजाय मिथकों, पुराकथाओं और लोककथाओं के साथ ज्यादा सहजता से संवाद बनाती रही है। हिन्दी में कवि खासतौर पर मिथकों की दुनिया में बार बार जाते रहे हैं और वहां से महत्वपूर्ण रचनात्मक सामग्री प्राप्त करते रहे हैं। 'राम की शक्तिपूजा', 'कामायनी', 'अंधा युग', 'कनुप्रिया', 'संशय की एक रात', 'आत्मजयी', 'अग्निलीक', से लेकर 'वाजश्रवा के बहाने' तक ऐसी कविताओं की शृंखला लम्बी है। विशेषतः महाभारत के आख्यान में कवियों को आधुनिक समय की अनेक मानवीय विशिष्टताओं और विडम्बनाओं के 'रूपक' दिखायी दिये हैं। ऐसे में पंकज राग जब इतिहास को एकाधिक कविताओं में उठाते हैं, तो यह दरअसल उनकी इतिहास से गहरी सम्बद्धता का

ही परिणाम है। संग्रह की दोनों लम्बी कविताएं स्वतंत्र रूप से विवेचन की मांग करती हैं। सुविधा के लिए हम यहां एक ही कविता पर बात करेंगे।

‘1857 के डेढ़ सौवें वर्ष में’ कविता का प्रारम्भ एक साधारण लगभग गद्यात्मक इतिवृत्त से होता है, जिसमें पंकज राग हमारे समय में मौजूद एक जरूरी सवाल को उठाते हैं। यह सवाल है ‘इतिहास की तिलांजलि’ और ‘सही इतिहास’ का। पंकज राग की खूबी यह है कि वे इतिहास में मौजूद नवीनतम मत मतांतर का भी संकेत करते हैं और लगभग सर्वस्वीकृत कॉमनसेंस बन चुके तथ्यों पर सवाल उठाने से नहीं चूकते। कई बार तो वे जैसे मौजूद ‘इतिहास’ की वैधता पर भी प्रश्न उठा जाते हैं। ‘लोक’ में मौजूद ‘साक्ष्यों’ और तेजी से मिट रहे मौखिक स्रोतों की अनदेखी की विडम्बना उन्हें मजबूर करती है कि वे ‘इतिहास’ के ‘महाआख्यानत्मक स्वरूप’ पर सवाल उठायें — और वे ऐसा करते भी हैं। कविता में ‘झांसी की रानी’ का उल्लेख अनेक प्रश्नों के साथ किया गया है — ‘कौन जानता है सिपाहियों द्वारा जोखन बाग में गोरों के कत्लेआम के बाद/झांसी की रानी फरवरी 1858 तक अंग्रेजों को चिट्ठियां लिख कर/ऐसे कौन से हिस्से तलाश रही थीं/और इस जमीन पर फिर ऐसी क्या हलचल हुई/कि उसी रानी में लोगों ने अपनी आवाज ही नहीं/और भी न जाने क्या क्या दूँढ लिया/वह खुद गुड़धानी खाकर भी सिपाहियों को पेड़ा जलेबी खिलाने वाली हो गयी/और बुंदेलखंडी विवाहगीतों में/उसकी लड़ाई सत्य और झूठ के बीच की लड़ाई का गाली गीत बन कर/गूंजती रही।’ यह ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा पर खड़े मौजूदा इतिहास के ‘सर्वस्वीकृत बोध’ पर भी सवाल है और लोक की चयनधर्मी चेतना का भी। यह प्रश्न अभी बना हुआ है कि यह छवि गरीब जनता के लोक ने गढ़ी या सामंतों और सामंतशाही की वापसी के समर्थक ‘लोक’ ने। लगता है कि यह ‘लोक’ का आस्थावादी और रणनीतिक मन था, जिसने आगामी लड़ाई के परिप्रेक्ष्य में एक लड़ाकू योद्धा की छवि का सृजन किया। इस आख्यान में ‘अनिर्णय के असमंजस’ के बजाय ‘निर्णय के बाद की संघर्षशीलता’ का गान गाया। अनिर्णय की सौदेबाजी अकेले की चीज थी और रणभूमि का युद्ध जनता के सामने की सार्वजनिक घटना। ‘लोक’ ने अंततः इसी को चुना। दरअसल ‘लोक’ ने ‘सम्पूर्ण व्यक्ति’ को नहीं ‘संघर्ष के (टाइप) नायक’ को गढ़ा। कहना न होगा कि पंकज राग इस तरह बौद्धिक स्तर पर अपने पाठकों को उकसाने में सक्षम रहे हैं — जो कि आज की कविता का एक बड़ा गुण है। यह भावनात्मक स्तर पर संवाद करने वाली कविता के बजाय संवेदित करने और जागरूक बनाने वाली कविता है।

1857 के जन प्रतिरोध पर पिछले दिनों असद जैदी की कविता छपी थी — सामान की तलाश। यह कविता हिन्दी में अत्यंत चर्चित हुई। 1857 के बाद के नवजागरणकालीन दौर के सक्रिय नेताओं के खिलाफ अपनी टीप के कारण विवादित इस कविता में भयानक किस्म की थिर निर्णयात्मकता है। यह एक तरह से फैसला सुनाती कविता है। पंकज राग की कविता विनम्रता से ढेर सारे प्रश्न उठाती है और फैसला देने में भी उसका स्वर संयमित है। झांसी की रानी के बारे में तथ्य उठा कर पंकज राग बहुत आसानी से 1857 में लड़ने वाले राजाओं, सामंतों, उच्चवर्गीय जनों के विरुद्ध एक टीप दे सकते थे; जैसा कि नवजागरण के नेताओं के खिलाफ असद जैदी की कविता में है, परंतु पंकज ऐसा न कर अपनी प्रतिज्ञा पर अडिग रहते हैं — ‘यहीं 1857 के तमाम प्रतिभागियों से हम छोटे भी रहे जिन्होंने/चाहे कैसे भी या किसी भी कारण से/उस समय की औपनिवेशिक सत्ता को ललकारा था।’ इतिहास के वास्तविक विद्यार्थी की तरह वे जानते हैं कि मनुष्य परिस्थितियों की पैदाइश है और परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए भी वह उनसे कभी भी पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाता। यहीं उसकी ‘परिस्थितियों’ और ‘कार्यों’ के बीच के तनाव से उसके अंतर्विरोधों का जन्म होता है। अंतर्विरोधों पर बात करते हुए परिस्थितियों के अनिवार्य दबावों और उससे मुक्त होने की आकांक्षा और प्रयासों पर गौर करना अनिवार्य है। असद जैदी के इतिहासबोध में यही कमी है। वे भूल जाते हैं कि 1857 के बाद का दौर अपेक्षाकृत शांत और थिर दौर है, जिसमें भारत अपनी सभी शक्तियों की पुनर्चना कर रहा था। पुनर्चना के इस दौर में नवजागरण

। के नेता नवीन आधुनिक ज्ञान विज्ञान से संवाद कायम कर भारत को नयी चाल में ढाल रहे थे। इस दौर के नयी चाल में ढल जाने के बाद ही स्वतंत्रता और स्वराज के लिए अपेक्षाकृत ज्यादा गम्भीर और निर्णायक संघर्ष शुरू होता है। लगभग 60 सालों के इस युग का भारतीय इतिहास में निर्णायक महत्व है। इस दौर में भारतीयों ने आधुनिकता को आत्मसात करने के साथ ही 'भारतीय ज्ञान विज्ञान' पर एक गहरी आस्था बनाये रखी। ओरिएंटल स्टडीज और इंडोलॉजी के विद्वानों द्वारा खड़ी की गयी भारी भरकम ज्ञान मीमांसा का सामना करने लायक साहस इन्हीं लोगों ने हमें दिया; उससे प्रभावित होने के बावजूद। परिस्थितियों के दबाव के कारण (असद जैदी कथित) यह 'भद्रलोक' दोहरा संघर्ष कर रहा था।

पंकज राग कविता में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि 1857 की लड़ाई सिर्फ सत्ता प्राप्ति की लड़ाई नहीं थी, ईस्ट इंडिया कम्पनी के औपनिवेशिक राज्य में आ रहे सांस्कृतिक परिवर्तनों ने इसमें महत्वपूर्ण उल्लेख का कार्य किया। जनता में इस नये सांस्कृतिक हमले के प्रति गहरा रोष था। इन सांस्कृतिक कारणों की ओर इशारा कर पंकज राग 1857 से तुरंत 'स्विच ओवर' करते हुए आज की नव औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा किये जा रहे सांस्कृतिक हमले तक पहुंचते हैं और इसके विरुद्ध हमारी भूमिका का प्रश्न उठाते हैं – 'हमसे अधिक 1857 को तो साथ लेकर चले हैं वही उपनिवेशी ताकत/जो अब सभी आडम्बर छोड़ पूरे निवेशी हैं/भौतिक जगत से लेकर अंतर्चेतना तक चलता है निवेश का खेल/तभी तो अब खतरे साफ नजर नहीं आते/वक्त इतनी तेजी से बीतता है खिलौने के बीच/कि विचार बन नहीं पाते, नजरें टिक नहीं पातीं/जीवन शैली का अर्थ मानो एक क्षण हो गया हो/और क्षण से क्षण की कुलांचों में पूरी पृथ्वी को नाप लेना ही माद्दा हो/क्योंकि पृथ्वी अब एक सी होने का आभास देती है।/पर पृथ्वी एक है कहा?/न कभी थी न है/जब जब यह अहसास जागता है तो 1857 जैसी कोई चीज होती है/जब जब यह अहसास मरता है तो 2007 बीतता चला जाता है।' पंकज राग अपनी इन दोनों कविताओं में अपने समय में लगातार बने रहते हैं। हमारे समय में मौजूद प्रश्न, चिन्ताएं, विवाद, तनाव, विडम्बनाएं और त्रासदियां लगातार उनके जेहन में मौजूद रहती हैं। इसलिए जब वे 1857 के बारे में बात करते हैं तो इस बहाने अपने समय के सबसे मौजूद सवालों से भी टकराते हैं। इसके लिए दोनों कविताओं में वे एक ही तकनीक अपनाते हैं – इतिहास और समकाल में बराबर आवाजाही। ठेठ ऐतिहासिक तथ्यों से गुजरते हुए वे जब अचानक किसी सामयिक प्रश्न पर आकर ठहरते हैं तो इस प्रक्रिया में वे एक 'सर्जक' एक 'रचनाकार' नजर आते हैं और एक 'कला' को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं, जिसे फिलवक्त हम 'कविता' कह रहे हैं।

1857 की बात करते हुए पंकज राग कविता में जनता द्वारा किये गये प्रतिरोध पर अपने को केन्द्रित करते हैं और स्वीकृत इतिहास में भुला दिये गये लोकनायकों और लोक साक्ष्यों की उपेक्षा का सवाल उठाते हैं। इलाहाबाद के कोयले का गोदाम जलाने वाले साधारण विद्रोही, बाबू कुंवर सिंह के समर्थक धोबी, मंडला के दुखन और मंगनू गोड़ और निमाड़ी भीलों के नायक भीमा कविता के नायक हैं। इस प्रकार पंकज राग एक साथ दो तरह का संघर्ष छेड़ते हैं – लिखित के समानांतर वाचिक का संघर्ष तथा कुलीन नायकों के समानांतर लोकनायकों का संघर्ष।

असद जैदी की कविता में 1857 के बारे में एक थिर कॉमनसेन्स प्रकट होता है, जिसमें 1857 की लड़ाई को एक रोमैण्टिक और आइडियलिस्टिक एप्रोच से देखा गया है तथा उसके अंतर्विरोधों और विडम्बनाओं की उपेक्षा कर उसे लगभग एक ग्लैमरस क्रांतिकारी आख्यान में बदल दिया गया है। वहां 1857 में मौजूद भद्रलोक (उच्च वर्ग) के असमंजसों पर कोई टीप नहीं है। परंतु यह कन्शेसन बाद के भद्रलोक को नहीं दिया गया है और उसे प्रायः 1857 के विरुद्ध खड़ा कर दिया गया है। पंकज राग के इतिहासबोध में यह असंतुलन नहीं है। वे 1857 के अंतर्विरोधों के प्रति सचेत हैं और उनकी ओर संकेत करना आवश्यक मानते हैं। इससे यह भी समझने में मदद मिलती है कि 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष और नवजागरण के नेता एक ही तरह की भेदवादी, सवर्ण और पुरुष समर्थक सामंती सामाजिक

संरचना की पैदाइश थे और उनकी रणनीतियों, घोषणाओं, कार्यों, आकांक्षाओं और स्वप्नों तक इनकी पैठ थी। वस्तुतः नव औपनिवेशिक शक्तियों के प्रति सावधान करने में ही 1857 के क्रांति प्रसंग की प्रासंगिकता है और यह काम दोनों कवियों ने किया है। सफलतापूर्वक।

दो लम्बी कविताओं के अतिरिक्त संग्रह में चार कविता शृंखलाएं हैं, यानी एक वस्तु के इर्द गिर्द घूमती अनेक कविताएं। 'समय पर कुछ कविताएं' में कवि कविता में अपनी बात स्पष्ट नहीं कर सका है। कुछ चमकदार पंक्तियों को छोड़ दें तो कविता दार्शनिक स्तर पर उलझी हुई है। 'कुछ कविताओं के बहाने' का शीर्षक यूं भी हो सकता था — बहाने के बहाने कुछ कविताएं। ये कविताएं बहाने पर केन्द्रित हैं। इनमें एक तरह का खेल है, बहाने पर पंक्तियों का सिलसिला रचने का खेल, जिसे कवि ने कविता माना है। 'नये साल पर कुछ कविताएं' — इस कविता शृंखला में अपेक्षाकृत वैचारिक तारतम्य है और नये साल के बहाने नये समाज की रवायतों पर एक कठोर टीप भी — *नये साल के कार्ड आने लगे हैं/और मेरी मेज पर बिनखुले जमते जायेंगे/जानता हूं अंदर का मजमून क्या होगा/वैसा कुछ होगा नहीं नये साल में/वैसे कुछ भी नहीं होता नये साल में/सिवा अंदर की कुछ और बातों के।*

ये कविता शृंखलाएं वस्तुतः आइडिया कविता की तरह हैं, परंतु आइडिया कविता में विचार या अनुभव की शापनेस को जिस खास नुकीलेपन से व्यक्त किया जाना चाहिए, वह इनमें प्रायः नहीं है। एक तरह की फिलासफिकल उलझन और अस्पष्टता के कारण ये कविताएं संग्रह की कमजोर कविताओं में शुमार की जायेंगी। कविता शृंखलाओं में ही नहीं पंकज राग की अन्य छोटी कविताओं में एक तरह का अटपटापन दिखायी देता है — कभी यह पंक्तियों के विन्यास में प्रकट होता है, कहीं विचारों की अस्पष्टता में। ऐसे में कविता का सम्पूर्ण अर्थ और अभिप्राय साफ नहीं हो पाता है। इनसे पंकज राग की काव्य सम्भावनाओं पर नकारात्मक असर पड़ता है।

पंकज राग की कविताओं में भारतीय जीवन, प्रकृति और जनता के चित्र प्रायः नहीं हैं। उनकी कविता में ऐन्द्रियता, ऐन्द्रिय संवेदना और तत्जनित आवेग भी प्रायः अनुपस्थित हैं। ये विचार प्रक्रिया से उपजी कविताएं हैं। यह भी महत्वपूर्ण है कि इन कविताओं में 'मैं' की प्रभावी उपस्थिति है। 'मैं' के जीवन का कोई चित्र, कोई ब्यौरा इनमें नहीं है, इसलिए 'मैं' की कोई निश्चित शक्ति सूत्र और उसके जीवन की तस्वीर भी नहीं उभरती। वह मुक्तिबोध की तरह स्पष्ट मध्यवर्गीय जन नहीं है परंतु उसके करीब है। वह निश्चय ही समाज निरपेक्ष, आत्मग्रस्त और आध्यात्मिक उलझनों में उलझा 'मैं' नहीं है। कवि ने इसके माध्यम से दुनिया का जायजा लिया है। यह एक विश्लेषक और व्याख्याकार है। 'मैं' दरअसल जीवन कथा का हिस्सा होने के बजाय कथन की प्रविधि का हिस्सा ज्यादा है, जो समय और समाज का आलोचनात्मक पाठ तैयार करते हुए कवि के सरोकारों को भी सामने रखता है। इस क्रम में कवि सबसे पहले भूमंडलीकरण का सामना करता है। भूमंडलीकरण के प्रभावों को सिर्फ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के राष्ट्रों के मध्य नियंत्रणहीन आवागमन और उनकी व्यावसायिक गतिविधियों से नहीं समझा जा सकता। उसके सबसे घातक प्रभाव पूंजीवादी विकृतियों के रूप में देखे जा सकते हैं। पंकज इन प्रभावों को समवेत रूप से देखते हैं। संग्रह की पहली ही कविता 'यह भूमंडलीकरण की रात है' इसका साक्ष्य है। इस रात में 'पूरा भूमंडल इस कमरे में है/कुछ रोशनी हमारे आई.एम.आर. और एम.एम.आर. के कारण ही इस जगह है/हमारी थकान कर्ज से भी मिटती है, अनुदान से भी/विदेशी शराब जैसी निर्बाध उधारी/कांच के रेशों की तरह का अनुदान/जो हल्के हल्के काटता है/खून कमरे के बाहर ही टपके/इस रात इसका भी पुख्ता इंतजाम है।/ऐसी ही रातें सौ साल पहले भी थीं/लेकिन तब शायद एक स्पष्ट पहचान थी/अब सब कुछ गड्डमड्ड हो गया है/विभेद डूब गया है।' यह भी कि 'रात को खींच कर निकाला जा रहा समय/दिनों को निचोड़ कर बनायी जा रही जगह'। यह रात है, जहां गहन अंधेरा है और अंधेरे में घट रही गतिविधियों और जनविरोधी षडयंत्रों को समझने के लिए मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' जैसा दीर्घ, वैचारिक रूप से स्पष्ट, साहस और सूझबूझ से भरा कवि प्रयास

चाहिए। कवि इसकी पीठिका तैयार करता है। यह महत्वपूर्ण है कि अनेक कविताओं में इसके रहस्यों को समझने की कोशिश की गयी है।

‘कहानी’ नामक कविता में कहानी का अर्थ ‘पारम्परिक कहानी’ से नहीं बल्कि भूमंडलीकृत विश्वग्राम के सांस्कृतिक दूत बहुचैनली टी.वी. पर बड़े उत्पादकों द्वारा वित्तपोषित और प्रायोजित कहानियों से है। ये कहानियाँ हमारे ही परिवारों की एक ऐसी छवि प्रस्तुत करती हैं जिनमें विकृत पूंजीवाद के अमानवीय सम्बंधों और पुरुष सत्तात्मक सामंती सम्बंधों का ग्लैमरस घोल होता है। ‘स्वाभिमान’, ‘क्योंकि सास भी कभी बहू थी’, ‘कहानी घर घर की’, ‘कहीं किसी रोज’ से लेकर ‘बालिका वधू’ तक की कहानियों को लक्ष्य बना कर लिखी गयी यह कविता भूमंडलीकृत भारत की एक तस्वीर प्रस्तुत करती है — ‘हमने भी एक तुलसी लगा ली है/मेरी पत्नी उसे रोज पूजती है/पड़ोसिनें हमारे घर खूब आने लगी हैं/मेरी पत्नी अब दोपहर में सोती नहीं/वह हर शाम मुझसे काले धागों की बातें करती है/ मेरे बच्चे प्रतियोगी हो चुके हैं/हमें देश पर संशय होने लगा है/अब हमारे घर की भी एक कहानी है।’ ‘वह हर शाम मुझसे काले धागों की बातें करती है’ ‘मेरे बच्चे प्रतियोगी हो चुके हैं’, और ‘हमें देश पर संशय होने लगा है’ जैसी पंक्तियों के अभिप्राय गहरे हैं। यह स्पष्ट है कि भूमंडलीकृत बाजार सामंतवादी मध्यकालीनता के लिए जगह निकाल रहा है ताकि नयी ‘सांस्कृतिक निर्मितियों’ (जैसेकि सीरियलों, धार्मिक प्रवचनों वाले चैनलों की सामग्री) के लिए नये खरीदार ढूँढे जा सकें। ‘धार्मिक निर्मितियों’ का एक पूरा उद्योग पिछले समय में विकसित हुआ है। भूमंडलीकरण की शक्तियाँ ‘पोर्नोग्राफी’ भी बेचती है और ‘अध्यात्म’ भी। ये अनेक कारणों से सांस्कृतिक मूलवादी और पुनरुत्थानवादी शक्तियों से समझौता करती हैं। ‘गौरव यात्रा’ कविता में इसके गहरे संकेत हैं। भारत में रथयात्रा निकालने वाले हिंसक मूलतत्त्ववादियों ने ही अबाध गति से उदारीकरण जारी रखा और फीलगुड तथा इंडिया शाइनिंग जैसा राजनैतिक प्रोपेगण्डा किया। भूमंडलीकरण की एक बड़ी शक्ति है — सूचना उद्योग। सूचनाओं के शक्तिशाली ‘बाजार’ पर पंकज राग की नजर है — ‘हाट बाजारों में टोकरी भर भर सूचनाएं लेकर बैठेंगे मिट्टी के लोग/और सोना बनता जायेगा।’ कवि ने यहां भारतीय जनतंत्र में क्रांतिकारी माने गये ‘सूचना के अधिकार’ को इस ‘सूचना उद्योग’ से जोड़ा है। उसे इस तथाकथित अधिकार की सच्चाई और जनवादिता पर गहरा शक है — ‘सड़कें चमकती जायेंगी जब मिल जायेगा सूचना का अधिकार।’

पंकज राग की कविता में व्यवस्था अमूर्त रूप में उपस्थित है, परंतु सूखा, मत फाड़ो, सम्पूर्ण साक्षरता, बड़े साहब, सूचित तो तुम्हें होना ही पड़ेगा, संस्कृति संचालनालय जैसी कविताएं पढ़ कर स्पष्ट होता है कि उसके विद्रूप से वे भलीभांति परिचित हैं। इन कविताओं में एक खास तरह का आक्रामक व्यंग्य अंतःस्यूत है। यदि इन कविताओं के साथ ‘दिल्ली : शहर दर शहर’ के सत्ता सम्बंधी विचारों को जोड़ कर देखा जाय तो स्पष्ट होता है कि कवि जनता की उपेक्षा करने वाली वर्चस्वकारी शक्तिसम्पन्न सत्ता संरचना के विरुद्ध है, हालांकि इनमें साधारण जनता के पक्ष में स्पष्ट कोई बयान मौजूद नहीं है। दरअसल साधारण जनता के जीवन चित्र न होने से उसके साथ कवि के संवेदनात्मक रिश्ते और उसके प्रति उसकी वैचारिकता को स्पष्ट होने का ज्यादा अवसर इन कविताओं में नहीं मिला है।

पंकज राग की कविता अपनी भाषा के कारण विशिष्ट है। यह हिन्दी, उर्दू की मिलीजुली जमीन वाली खड़ी बोली की कविता है, जिसमें उर्दू के और इस तरह अरबी, फारसी, तुर्की मूल के शब्दों का प्रयोग है। यहां देशज, तत्सम, तद्भव और उर्दू के शब्द आसपड़ोस में इस तरह मिलते हैं, जैसे वे बरसों से एक साथ इसी तरह मिलते आये हों। वर्तनी के प्रति भी इनमें एक खास तरह की सावधानी बरती गयी है। नुक्तों के प्रयोग पर जोर दिया गया है। फोन, लहजा, ज़मीन, गलत, खुश, मरकज़, लिफाफों, साफ़ जैसे सैकड़ों शब्द हैं जिनमें नुक्तों को अनिवार्यतः लगाया गया है। परंतु यहीं ‘मुखालफत’ की जगह ‘खिलाफत’ शब्द का एक से अधिक बार प्रयोग खटकता है। यहीं इस भाषा की कठिनाइयाँ भी सामने आती हैं। दखील (78), बहिश्त की माहीयत (78), मुंखथिल(73), कीमारबाजी (47), मुन्कर और नकीर (48) जैसे शब्दों के अर्थ के लिए हमें शब्दकोशों की शरण लेनी पड़ेगी, जिनका बड़ी मात्रा में यहां प्रयोग

किया गया है।

पंकज राग की कविताएं अपनी बुनावट में इतिवृत्तात्मक गद्यधर्मी कविताओं के करीब हैं। कविता की गद्यात्मकता अपने आप में नकारात्मक गुण नहीं है, परंतु जीवन का कोई न कोई मर्म उसमें मौजूद दृश्य, चित्र, घटना, संवाद, चरित्र या विचार के माध्यम से प्रकट होना चाहिए। पंकज राग की कविताएं वैचारिक होने के कारण गद्यात्मक हैं, इसलिए वे जहां वैचारिक रूप से परिपक्व हैं, वहां एक कवि के रूप में उनकी उड़ानें प्रभावशाली हैं। उनके काव्य प्रयासों से नये रास्तों का पता मिलता है। खासतौर पर इतिहास से संवाद की कोशिश उनकी कविता को हिन्दी काव्यदेश में एक अलग जगह दिलाती है।

हमारे समय में मौजूद चिन्ताएं तुषार धवल के कविता संग्रह 'पहर यह दोपहर का' में मौजूद हैं। तुषार धवल विस्तृत कैनवास के कवि हैं। एक ओर वे अपने समय की नागरिक कथा कहते हैं तो दूसरी ओर निजी भावनाओं को कविता में आने देते हैं, तीसरी तरफ वे अपनी आध्यात्मिक कही जा सकने वाली अनुभूतियों को कहने में नहीं हिचकते। तीनों ही कविता भूमियों में एक कवि के रूप में उनकी सम्बद्धता में समान तीव्रता (इंटेंसिटी) है।

तुषार धवल जिस नागरिक की कथा कहते हैं अर्थात् जो नागरिक उनकी कविताओं से उभरता है, वह एक विस्थापित गंवई है। इसने गांव को खो दिया है। यह जिस महानगर में रह रहा है, उसने उसे नहीं अपनाया है। 'अलगाव' का यह विशिष्ट बोध तुषार की कविताओं में गहरे तक मौजूद है। यह व्यवस्था द्वारा हाशिये पर डाल दिया गया नागरिक है, जिसमें अपनी सांस्कृतिक सम्बद्धताओं को जीवित रखने की गहरी इच्छा है। तुषार की कविता स्पष्टतः हाशिये में खड़े इस आदमी के पक्ष में खड़ी होती है। इसलिए उसमें व्यवस्था और समकालीन राजनीति के प्रति तार्किक आक्रोश व्यक्त होता है। व्यवस्था के ठेठ भारतीय संदर्भों और वैश्विक परिप्रेक्ष्य दोनों को ही यह कविता अपने दायरे में लेती है। साधारण अर्थों में भूमंडलीकरण, उदारीकरण, आतंकवाद, पर्यावरण, भ्रष्टाचार, विकास की राजनीति व क्षेत्रवाद, व्यवस्थाजनित विस्थापन और भेदवादी राजनीति इन कविताओं में कहीं न कहीं मौजूद हैं। तुषार इन प्रश्नों को निरी राजनैतिक टीका टिप्पणी की तरह नहीं बल्कि साधारण नागरिक के संदर्भों के साथ उठाते हैं। आम आदमी के प्रति गहरे सहभाव से इन कविताओं की राजनैतिक टीपों को संवेदनात्मक वैधता मिलती है। साधारण मनुष्य के प्रति गहरी सम्बद्धता तुषार को हिन्दी कविता की जनपक्षधर काव्यधारा के निकट खड़ा कर देती है — 'वह जो हाशिये पर खड़ा है/उसने सबको पुकारा था/लेकिन उसे अनसुना करके बढ़ गये सब/एक भेड़चाल में/अपने अपने चरागाह की तरफ/अब अकेला गिन रहा है/ईंट पत्थर आंकड़े और/व्यवस्था के नाक के बाल।' यही नागरिक तुषार की उम्मीद भी है — 'अजनबी दौर के/बयान में जो/अनदेखा रह गया है/वही तन्हा/जलाता है/गुम अंधेरी मीनारों पर/चिराग।' उनकी स्पष्ट मान्यता है कि यह आदमी ठगा गया है — 'हम ठगे गये लोग हैं/तुम्हारी दी हुई रोशनी/हम पर अंधेरे की उल्टियां करती है/गली मोहल्ले सड़क चौराहे भीड़ में/मुखौटे तैरते हैं तुम्हारे/तुम्हारे पास सुख की मरुभूमि है/और हमारे पैर नंगे।' नयी अर्थव्यवस्था ने इस मनुष्य पर पहले से चले आ रहे दबावों को हजारों गुना बढ़ा दिया है। स्थानांतरण और विस्थापन बढ़ा है, सांस्कृतिक सामाजिक आधारों से अलगाव बढ़ा है, अकेलापन और बेचारी बड़ी है। उसमें बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में व्यवस्था को बदलने की जो इच्छा मौजूद थी, उसमें कमी आयी है। प्रतिरोध और विद्रोह को सुसंगत तरीके से जनता के एजेण्डे से हटाने की कार्यवाहियां और रणनीतियां सफल हो रही हैं। परिणाम यह है कि प्रतिरोधी समूह का अंग न हो पाने के कारण एक खास तरह का अवसाद जनता में दिखायी देता है। तुषार इसे स्पष्ट रूप से सामने लाते हैं — 'यहां जिन्दगी अब/टूटा हुआ ग्लास है/जिससे रोशनी के परखच्चे छिटक छिटक के उड़ रहे हैं।' नयी भूमंडलीकृत अर्थव्यवस्था जिन नये तरीकों से साधारण

। मनुष्य को छल रही है कवि उनका खुलासा करता है — ए.टी.एम क्रेडिट कार्ड और आसान किस्तों के वादे/अब अचानक चुप हैं/और बाजार के हजार हाथ गला घोट रहे हैं/जो बिक गये/उजड़े घड़ों से कहते हैं/ई.एम.आई. की किस्तों के पार कहीं रहते हैं सपने। भूमंडलीकरण के दौर में उभर रहे मनुष्य के आत्मकथन महत्वपूर्ण हैं — जरूरत नहीं है/फिर भी मुझे चाहिए/मैं हिस्सा हूँ हवस का।

यह अपने पुराने सामाजिक, सांस्कृतिक आधारों से पूरी तरह विच्छिन्न हो चुका है — 'मुझे सपनों में कोई गांव नहीं पुकारता/नहीं दुलारते है पूर्वज/दंतकथाओं का कोई सिरा नहीं जुड़ा है मेरे पोर से।'

तुषार धवल की कविताओं में व्यवस्था के प्रति गहरा आक्रोश है। व्यवस्था के मनुष्य विरोधी कारनामों का लेखा जोखा यहां मौजूद है। आतंकवाद की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी कविता 'तुम्हें फांसी नहीं होगी' में कवि किसी आतंकवादी को सम्बोधित करते हुए स्पष्ट करता है — 'अब मुआवजों की काली छाया/हू हू कर नंगी नाचेगी/यह ऐलानों का दौर है/बेहतर है हम मसरूफ रहें/तफ्तीश तबादले जिरह/कई कई अध्याय हैं रंगमंच पर/कोई सिर धुनेगा/बटोरेंगा वाहवाही/जालसाजी/जालसाजी/यह लीला है महामानवों की/कुर्सियां भयानक मुखौटे लगा कर/सड़कों पर चलते हैं/आतंक का तुम्हारा चेहरा/उसी की आंत से उपजा है/निश्चिन्त रहो/तुम्हें फांसी नहीं होगी।' इन कविताओं का मुहावरा अकविता के जमाने की याद दिलाता है।

संग्रह में मौजूद नागरिक कथा में विस्थापन की पीड़ा एक प्रमुख स्वर है। 'जिलावतन का देस' और 'कहां चले गये सब' इन दोनों कविताओं में यह संवेदनात्मक गहनता के साथ उभरता है। 'जिलावतन का देस' डूबी हुई टिहरी से विस्थापित जन की मौन पीड़ा को बेहद सांकेतिक ढंग से सामने रखती है। 'कहां चले गये सब' अर्थतंत्र के दबाव से विस्थापित मजदूरों की कथा कहती है — 'सबने सोचा एक चादर/और थोड़ी आजादी/सबने सोचा आकाश/और कुछ सपने/सबको था भरोसा किसी न किसी झंडे पर/फिर सब चले गये/कहीं न कहीं/अब उनको ढूंढता है/उनका पीपल/ग्राम देवता।' विस्थापित होने के बावजूद विस्थापितों के दुख कम नहीं होते। जिस नयी जगह पर वे प्रवास करते हैं, वहां के कठोर जीवन और पेशेगत कठिनाइयों के साथ हमारे समय में मौजूद भेदवादी अतिवादी हिंसक राजनीति के निशाने पर निरंतर बने रहते हैं — 'वे पंजाब असम महाराष्ट्र गये/और भी कहां गये/यहां से मजबूर हुए वहां गये/वहां भी मार दिये जायेंगे।'

विस्थापित गंवई जनों के प्रवास की कठिनाइयों और उनकी जिजीविषा को एक हद तक 'अक्सा बीच पर छठ पर्व' कविता सामने रखती है। भारत के विभिन्न भागों से आये साधारण जनों, कुशल अकुशल श्रमिकों, शिक्षितों और अशिक्षितों की सबसे बड़ी शरणस्थली है — मुम्बई। यूं तो पूरे देश के लोग यहां बड़ी संख्या में मौजूद हैं, परंतु इनमें सबसे बड़ी आबादी है यूपी. और बिहार के लोगों की। यहां के लोग मुम्बई में प्रायः सभी तरह के सस्ते श्रमों से सम्बद्ध हैं, परिणामस्वरूप इनकी कोई आर्थिक ताकत नहीं है। परंतु बड़ी आबादी होने के कारण धीरे धीरे इन्होंने अपनी सांस्कृतिक रवायतों को नये तरीकों से अभिव्यक्त करना शुरू किया है। इस प्रक्रिया में उन्हें सामाजिक राजनैतिक शक्ति प्राप्त हुई है। छठ जैसे पर्वों का मनाया जाना जहां एक ओर अपनी जड़ों से जुड़े रहने की उनकी गहरी इच्छाशक्ति को दर्शाता है, वहीं इस पर ठाकरे और शिवसेना परिवार द्वारा गत तीन वर्षों से चलाये जा रहे मराठी गैर मराठी संघर्ष की त्रासद छायाएं भी पड़ी हैं। इस पर्व पर नये बाजारू प्रभावों की भी झांकी दिख पड़ती है। इस कविता में तुषार ने हमारे समय की चुनौतियों को एक साथ स्पर्श किया है। 'लाल फकीरी' कम्युनिस्ट क्रांति का सपना देखने वाले युवाओं के व्यवस्था द्वारा आत्मसात कर लिये जाने का शोकगीत है। 'काला घोड़ा के कलाकार' कविता उन कलाकारों को समर्पित है, जो मंहगी कला वीथिकाओं में अपने चित्रों की प्रदर्शनी नहीं कर पाते, परंतु जनता से जुड़ने के क्रम में फुटपाथों पर चित्रों की प्रदर्शनी करते हैं।

तुषार की नागरिक कथा संग्रह के दो खंडों 'अजनबी इस दौर में' और 'दीवारों और सीढ़ियों' की 29 कविताओं में उभरती है, परंतु अपेक्षाकृत निजी भावनात्मकता को केन्द्र में रखने वाले खंड 'पुल पर मौन' की अनेक कविताओं में इसका विस्तार मौजूद है। 'सो रहे हैं पिता' वस्तुतः एक प्रवासी श्रमिक के बुढ़ापे का ब्यौरा भावनात्मक जमीन पर रखती है। 'उन्हें विदा करते हुए' में दो या अधिक बेटों के बीच झूलते बूढ़े माता पिता के माध्यम से, दरअसल इस युग की अनिवार्य संवेदनात्मक यातनाओं को सामने लाती है — 'दो बूढ़े पंछी बैठे हैं/ट्रेन की बर्थ पर/ टुकुर टुकुर ताकते/कुछ उम्मीदों से टूटे/कुछ ममता से बेबस/जिस डाल से उड़े थे/वह अभी तक कांप रही है/जब खेती थी तब ऐसा नहीं था/तब बेटों से 'मिलने' नहीं जाते थे/जमीन जड़ें अपनी होती थीं/मगर अब/वे दिन नहीं रहे/उनकी पीढ़ी में अब /दुनिया का अर्थ बिखरना होता है/बिखराव के बिन्दुओं को/नापते हांफते वे गुजर रहे हैं रोज रोज/एक बेटा ट्रेन में बिठाता है/दूसरा उन्हें लेने आता है/गुप्प यातनाएं/तोड़ती हैं खामोशी से/भीतर ही भीतर एक गुफा/गहरे हाहाकार से गूँज जाती है/बाहर पथरों में रिसता रहता है मीठा पानी।' 'ऑपरेशन थियेटर में अणिमा' यूं तो किसी दुर्घटना से पैदा होने वाले तनाव, संवेदनात्मक उथल पुथल और गहरे प्रेम की कविता है, परंतु इसमें प्रवासी नागरिकों के अकेलेपन की त्रासदी भी छुपी हुई है — 'यहां बैठा अकेला प्रेत हूँ/बदन पर भार सा है वही ठंडापन/जो यह शहर परोसता है।

तुषार धवल निजी भावनात्मक जुड़ावों को अपनी कविता में प्रभावशाली ढंग से रखते हैं। पिता, मां, पत्नी और बहनों पर लिखी कविताएं इसकी तसदीक करती हैं। सो रहे हैं पिता, मां, उन्हें विदा करते हुए, आपरेशन थियेटर में अणिमा, पुल पर मौन आदि कविताओं में नब्बे के दशक की कविताओं सी भावुक विकलता नहीं है और जैसा हमने कहा, ये भावनात्मक प्रसंगों के माध्यम से भी नये जीवन की कठिनाइयों की ओर संकेत करती हैं। उनकी प्रेम कविताओं में ऐंद्रियता ताकतवर ढंग से उभरी है। आज रात नहीं मानेगी रात, पहर यह बेपहर का, धंस गया हूँ तुममें, चोटी के मुहाने पर और मैं नदी तुम नदी आदि कविताओं में गहरी ऐंद्रियता है — 'कांप रहा नसों में/धड़कता लहू/पोर पोर से उग रही तुम/देह की छोर तक/आ गया हूँ/चांदनी के लिहाफ में।' इन कविताओं में स्पष्ट यौन संकेत मौजूद हैं — 'घुल चुके हैं छोर सब/अंतर बीत गये/पहर यह बेपहर का/जिसमें असंख्य उल्काओं सा/बरस रहा मैं तप्त/तुम धरती हुई जा रही/लाल दलदल में/समाधि ले गुम गया पुच्छलतारा/आतिशी अठखेलियां/सब समर्पित सब विसर्जित/इस धार में/आओ तन बदल लें/पहन लें देह को/फिर।

तुषार धवल की कविता अछूती दिशाओं और समकालीन कविता में अनुपस्थित भूमियों तक जाती है। इस दौर में मौजूद युवा कवियों में सम्भवतः वे अकेले हैं, जिन्होंने अपनी आध्यात्मिक अभिरुचियों और सम्बद्धताओं को सेन्सर नहीं किया है और वे न सिर्फ कविताओं में खुल कर व्यक्त हुई हैं, बल्कि उन्होंने कवि की सम्पूर्ण कहन पद्धति पर भी असर किया है। हमारे समय में मौजूद प्रदर्शनप्रिय आक्रामक अतिधार्मिकता और साम्प्रदायिकता के परिप्रेक्ष्य में इस पर अलग से बहस की जा सकती है। वैज्ञानिकता और भौतिकवाद के संदर्भ में उसकी वैधता की पुरानी बहस तो मौजूद है ही! संग्रह के खंड 'पार दहलीज के' में ऐसी अनेक कविताएं संग्रहित हैं। इसमें सर्वाधिक मुखर है लम्बी कविता 'नरसोबा ची वाड़ी : भाव छवियां'। तुषार इसकी पृष्ठभूमि सामने रखते हुए जिस तरह इसकी पृष्ठभूमि का परिचय देते हैं, उससे उनकी वैचारिकता और मानसिकता का पता चलता है — 'यहां चौदहवीं शताब्दी में स्वामी नृसिंहदेव सरस्वती ने, जिन्हें दत्तात्रेय का दूसरा अवतार माना जाता है, बारह वर्षों तक तपस्या की थी। आज भी साधकों के लिए यह भूमि परम प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण मानी जाती है। आध्यात्मिक शक्ति से ओतप्रोत इस तीर्थक्षेत्र में...'। इन कविताओं से गुजरते हुए कुछ बातें स्पष्ट होती हैं — तुषार को ईश्वर पर विश्वास है। वे कबीर, नानक और सूफियों द्वारा प्रतिपादित निर्गुण प्रेममय ब्रह्म की अवधारणा को स्वीकारते हैं। अपने ईश्वर के साथ मानवीय राग, अपनेपन और समर्पण से भरे रिश्ते की अभिव्यक्ति करते हैं। निर्गुणियों और सूफियों की तरह सम्भवतः वे

‘गुरु’ (सद्गुरु) में विश्वास करते हैं। परंतु ईश्वर के साथ अपने सम्बंध को मध्यस्थहीन रखना चाहते हैं। वे जीवन को ‘प्रेममय उत्सव’ की तरह देखने की वकालत करते हैं। ‘नरसोबा ची बाड़ी’ अर्थात् नरसोबा का घर के बारे में बताते हुए वे एक मग्न हृदय भक्त की ही तरह वहां की प्रत्येक वस्तु और गतिविधि में एक विशिष्ट आभा देखते हैं, जिसमें ईश्वर की उपस्थिति प्रकट होती है। यह भावना जगत के यथार्थ को मिथकीय आभा से ढक लेती है — हमने प्यार से पुकारा तुम्हें/नरसोबा/और तुम खिंचे चले आये/तुम्हारे साथ हैं/उदीप्त योगियों की कतार में/रामचंद्र योगी, गोपाल स्वामी, टेंबे स्वामी,/मौनी महाराज, नारायण स्वामी/और यहां के कण कण में/साक्षात् देव/खुली आंखों से पुकारते खड़े हैं/हमने कुछ कुछ सुना/बाकी बहुत कुछ अनसुना रह गया/अलग अलग आवाजों की योनियों में/इस परिधि में/भटक रहे हैं हम/और/आंखें तुम्हारी ओर ही टंगी हैं।’

आधुनिक काल में आध्यात्मिकता वस्तुतः पारम्परिक भाववादी चेतना का आधुनिक रूप है। यह प्रायः वैज्ञानिक आविष्कारों, सिद्धांतों का प्रतिकार नहीं करती परंतु दृश्यमान जगत के पार किसी अलौकिक शक्ति की उपस्थिति पर बल देती है और उसे ही जगत का नियामक तत्व मानती है। यह आधुनिक भाववादी चेतना एक हद तक वैज्ञानिक चेतना को आत्मसात करने की भी कोशिश करती रही है। इसलिए सार्वजनिक तौर पर अपने को पारम्परिक धर्म की दुनिया में प्रचलित अनुष्ठानों, रिवाजों से एक हद तक अलगाती रही है और अंधविश्वासों और रूढ़ियों का विरोध करती है। कहना न होगा कि समाज व्यवस्था के संदर्भ में यह आमतौर पर सुधारवादी रही है। अर्द्ध पूंजीवादी अर्द्ध सामंती भारतीय समाज में मौजूद गहरी आर्थिक असमानता, जातीय उत्पीड़न, धार्मिक हिंसा, लैंगिक भेदभाव को आलोचनात्मक नजरिये से देखने वाले अनेक विचारक और आध्यात्मिक गुरु भारत में बीसवीं सदी में हुए हैं जो समाज को (आमूल चूल बदले बिना उसे) एक मानवीय चेहरा देने पर बल देते रहे हैं। इसलिए वे भक्तों की तरह दया, सहानुभूति, भाईचारा और प्रेम जैसे मानवीय मूल्यों पर बल देते रहे हैं। आधुनिक चेहरे वाली इस आध्यात्मिकता के समानांतर धर्म की दुनिया में पारम्परिक धर्म संगठनों और सम्प्रदायों के मूलतः मध्यकालीन विश्वासों और रीतियों पर बल देने वाले धर्मगुरु भी निरंतर समाज में सक्रिय रहे हैं।

लगभग एक सदी में पारम्परिक सामंती धार्मिकता और आधुनिक भाववादी आध्यात्मिकता के मध्य निरंतर चलते रहने वाला संघर्ष भी मौजूद है। पिछले लगभग चालीस वर्षों में भारतीय शास्त्रीय संगीत, नृत्य और चित्रकला की तरह धार्मिकता आध्यात्मिकता के इन दोनों रूपों ने भी यूरोप और अमेरिका के पूंजीवादी देशों और समाजों में अपना एक बाजार निर्मित किया है। इस प्रक्रिया में जहां एक ओर अठारहवीं उन्नीसवीं सदी में पौराण्यवादियों (ओरिएंटलिस्टों) और भारत विद्याविशारदों द्वारा खड़ी की गयी ‘विश्वगुरु’ की अवास्तविक छवि का विकास हुआ है, वही दूसरी ओर पूंजीवादी समाज में रहते हुए उसकी विकृतियों से बाहर आने का एक छद्म विकल्प भी सामने आया है। यह विकल्प प्रत्यक्षतः समाजवाद के विकल्प के समानांतर खड़ा होता है। सम्भवतः इसलिए इन पूंजीवादी राष्ट्रों की सरकारों ने इन गतिविधियों को खूब फलने फूलने दिया है। भारत में भी समाज के सामंती आधारों को गहरी चुनौती न देने वाले मध्यवर्ग के विकास के साथ ही पिछले बीस पच्चीस वर्षों में इनका एक स्थानीय बाजार तेजी से विकसित हुआ है। विभिन्न तरह के कथावाचक, प्रवचनकर्ता, संकीर्तक, गवैये, ज्योतिषी, योगगुरु, पुरानी पद्धतियों के वैद्य चिकित्सक और विविध धाराओं के साधू-संन्यासी, मठाधीश, पुरोहित एक ओर हैं तो सोफेस्टिकेटेड, एजुकेटेड और महंगे आध्यात्मिक गुरु दूसरी ओर। ऐसी अवस्था में एक कवि की आध्यात्मिकता अनेक सवाल खड़े करती है। तुषार धवल की आध्यात्मिकता एक समाज निरपेक्ष कलावादी कवि की आध्यात्मिकता नहीं है, वरन यह जनपक्षधर दिखने वाले कवि की आध्यात्मिकता है। निश्चय ही कवि का द्विधाविभाजित मन है, जहां एक ओर कवि एकांतिक निजी तौर पर आध्यात्मिक है, तो दूसरी ओर समाज के साधारण नागरिकों के प्रति गहन रूप से संवेदनशील भी।

यह स्पष्ट है कि अंततः आध्यात्मिकता का यह रूप एक यथास्थितिवादी समाज व्यवस्था का समर्थन करती है ऐसे में साधारण नागरिकों के प्रति गहन संवेदनशीलता सिर्फ करुणा उपजा सकती है, मूलगामी बदलाव के रास्ते नहीं दिखा सकती।

कवि के रूप में तुषार कविता की आधुनिक परम्परा के काव्य उपकरणों पर भरोसा करते हैं। इतिवृत्त का सलीके से संयमित इस्तेमाल करते हुए वे कहीं भी निबंधात्मक इतिवृत्त को कविता में ज्यादा जगह नहीं घेरने देते। यह गद्यात्मकता से एक हद तक परहेज करती कविता है। एक अर्थ में अज्ञेय और अशोक वाजपेयी तथा केदारनाथ सिंह और अरुण कमल जैसे भिन्न वैचारिक सरणियों वाले कवियों द्वारा एक साथ अपनाया गया काव्य रूप है जो अस्सी के बाद के कवियों की एक धारा द्वारा गहरी आत्मीयता से विकसित किया गया है। कुमार अम्बुज, एकांत श्रीवास्तव और ब्रीनारायण जैसे कवि इसके अग्रणी हैं। तुषार की कविताओं में भाषा का इस्तेमाल बेहद संयमित है। इसमें काव्योचित मितव्ययिता है। वह प्रगीत की तरह संघनित है, परंतु, उसमें भावुक बहक और भावुक विकलता प्रायः नहीं है। कविताएं सुसंगठित और गठी हुई हैं। खास तरह की कवि दक्षता उनकी ज्यादातर कविताओं में दिखायी देती है।

रविकांत युवा कवि हैं। पिछले बारह तेरह वर्षों में उनकी कविताएं पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। सतत प्रकाशन के अभाव में उनकी कोई स्पष्ट पहचान नहीं बन पायी, इस कमी की भरपाई करता है, भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित उनका पहला संग्रह यात्रा।

रविकांत प्रायः छोटी कविताएं लिखते हैं। संग्रह की 75 कविताओं में 52 कविताएं एक पृष्ठ (या उससे भी कम जगह) घेरती हैं। इन कविताओं से गुजरते हुए हम पाते हैं कि इनमें जीवन के साक्षात् वास्तविक चित्र बेहद कम हैं, बल्कि इनमें जीवन की विविध परिस्थितियों से उपजी प्रतिक्रियाएं दर्ज हैं। स्पष्ट है कि इन प्रतिक्रियाओं का कैनवस कवि (या मैं) का अंतर्मन है। यह अंतर्मन मध्यवर्गीय शहरी नागरिक का अंतर्मन है और ये कविताएं उसमें उभरते जगत से एक संवाद। स्पष्ट है कि इसमें जगत की तस्वीर स्पष्ट रूप से नहीं उभरती, वह उसमें छिपी हुई है, कहीं गहरे। ये कविताएं एक तरह का एकालाप हैं। भिन्न तरह का एकालाप, जिसमें आत्मकथा के अंश नहीं हैं, परिस्थितियों से संवाद मुखर है।

कहा जा सकता है कि कवि के रूप में रविकांत मूलतः अपने सामने मौजूद किसी विशिष्ट अनुभव क्षण को कविता में लाते हैं। इस तरह उस क्षण मौजूद जीवन चित्र, चरित्र, वक्तव्य, वाक्य या संवेदनात्मक अनुभव या तो सीधे या विवेचनात्मक बयान के रूप में कविता में दर्ज हो जाते हैं। इसमें जब कोई युक्ति तीखी नुकीली होती है, तो कविता एक सम्पूर्ण काव्य अनुभव में बदल जाती है, अन्यथा एक काव्याभास देकर खत्म हो जाती है। कहना न होगा कि रविकांत की कविता में ऐसी कविताओं की संख्या अच्छी खासी है। दरअसल कवियों के लिए यह एक समस्या है। अक्सर कवि कविता की भाषा, शिल्प और रचना प्रक्रिया को साधने के बाद इस स्थिति में आ जाते हैं कि वे किसी भी अनुभव या कविता की सम्भावना वाले क्षण को कविता की जमीन पर एक न्यूनतम काव्यात्मक आभा के साथ उतार सकते हैं। ऐसे में जबकि कहा जाता हो कि कवि को हमेशा अपने अनुभवों को कागज पर उतार लेना चाहिए, कवियों के पास ऐसे काव्य अनुभवों या काव्य क्षणों का अम्बार लग जाता है। परंतु एक सतर्क और सचेत कवि ही जीवन की विभिन्नताओं को — एक एक स्पार्क में व्यक्त कर सकने की क्षमता रखने वाले अनुभवों को — एक शृंखला में बांध कर या किसी बड़ी योजना में समाहित कर उन्हें एक सम्पूर्ण एवं परिपक्व काव्यानुभव में रूपांतरित कर पाते हैं। आज के जीवन की सामाजिक, नागरिक एवं पेशागत व्यस्तताओं में अक्सर ही इतना समय और धैर्य सम्भव नहीं हो पाता। ऐसे में आसान रास्ता उनको ज्यों का त्यों व्यक्त कर देने का ही होता है। रविकांत ने कवि के रूप में प्रायः इसे तरजीह दी है और अपने काव्य अनुभवों या काव्य क्षणों को कविता में आने दिया है। बड़ी मात्रा में उनकी ऐसी

कविताएं हमारे सामने हैं जिनकी भांगिमाएं काव्यात्मक तो हैं पर उनमें एक पूरी कविता सम्भव नहीं हो सकी है। दरअसल संग्रह कठोर सम्पादन की मांग करता है।

स्पष्ट है कि जीवन की कोई विस्तृत तस्वीर इन कविताओं से नहीं उभरती। ये प्रायः आत्मवक्तव्य के रूप में हैं, जिनमें 'मैं' शामिल है। कविताएं 'मैं' के इर्द गिर्द घूमती हैं। वैचारिक या भावनात्मक प्रतिक्रियाएं, उलझनें, तनाव, भावुकताएं, दुख और प्रेम 'मैं' शैली में कहे गये हैं। यह एक ऐसा तंतु है जिसमें रविकांत, पंकज राग और तुषार धवल को जोड़ कर देखा जा सकता है। सम्भवतः यह हमारे समय और हमारी मध्यवर्गीय नागर जीवनचर्याओं का दबाव है। हमारे चारों ओर बिखरा विस्तृत सामाजिक जीवन या तो हमारे लिए दिलचस्पी की वस्तु नहीं रह जाता या फिर उससे हमारा प्रत्यक्ष सम्पर्क टूट जाता है। इस कारण वह विस्तृत जीवन अपनी जकड़नों के साथ हमारे जीवन और इस तरह हमारे काव्य अनुभव का हिस्सा नहीं रह जाता और कवि इसकी भरपाई इस जीवन के सम्बंध में विविध ज्ञान स्रोतों में मौजूद सूचनाओं से करता है या फिर वैचारिक वक्तव्यों से। इससे कविता में वह 'निर्मल अकुंठ आवेग' नहीं होता जो 'कसकते मूल अनुभव' से उपजने से होता है।

संग्रह की छोटी कविताओं में वैचारिकता मुखर है। नये जीवन के सम्बंध में सूक्तियां भी इन कविताओं में बिखरी हैं, जिनमें एक तरह का फार्मूलेशन मौजूद है। बुरे दिनों में, मां, कविता का प्रतिनायक, मखमल की बोरी आदि ऐसी ही कविताएं हैं। अनेक कविताओं में जीवन और संघर्ष के प्रति गहरी आस्था है — *काली सुनसान/काली, गरम सड़क के किनारे/खेत की मेड़ के पास/उत्फुल्ल लाल फूलों से/ दागी देह लिए/मुट्टी बांधे, सीना ताने/लू सहने की बहादुरी आंकने वाले/पट्टे के सिवा/और कुछ नहीं बनना चाहता मैं/और कुछ भी नहीं।* इसे वह जीवन का करेण्ट कहते हैं। एक तरह से कबीराना ठाठ से जीने की इच्छा भी अभिव्यक्त होती है, जिसमें धर्म, जाति और कुलीनता की पहचानों के प्रति एक गहन उपेक्षा भाव भी है — *मेरे बारे में जान कर क्या करोगे!/मां धोबिन थीं/बहन काइथ है/बाबा काइथ थे/दादी नीच जात की थीं/पिता काइथ हैं।/और क्या बताऊं अपने बारे में।/बुनता हूं आदमी की पहचान/गुनता हूं सुख दुःख/काशी के निकट।*

यह निम्नवर्गीय जनों का शामिल कुल है, जहां दुख और सुख साझे हैं। हिंसा, आतंक, भेद और असमानता पर आधारित मनुष्य विरोधी व्यवस्था के कारण इस जीवन में दुख है, तनाव है, भय है। समकालीन जीवन की अनेक विडम्बनाएं जिनसे हमारा सामना हर रोज होता है इन कविताओं में मुखर होती हैं — *अब जबकि मेरे बहुत ही करीबियों के साथ/यह बात हो चुकी है/मैं/हर हुच् हुच् या उंग उंग की आवाज से/बुरी तरह कांप जाता हूं/कि कहीं/बगल के कमरे में, आंगन में, या कि/आगे की ओर बरामदे में/किसी का गला तो नहीं रेटा जा रहा है!*

इन कविताओं में सर्वाधिक प्रभावशाली कविताएं वे हैं जिनमें कवि ने जीवन के चित्र या छोटे आख्यान का सहारा लिया है। कवि की संवेदना का स्पष्ट प्रतिरूप इन कविताओं में मिलता है। 'शायद सात साल की बच्ची', 'रीवा', 'घर से दूर', 'चने', 'रॉबिन अमीन', 'ड्राईवर टू' और 'चोर' ऐसी ही कविताएं हैं। अपेक्षाकृत लम्बी कविताओं में भी प्रायः आख्यान का कोई न कोई रूप मौजूद है। अस्पताल में पिता, नयन, सुबह सबेरे और अखबार, यात्रा, ऐ रघु और एक दोस्त की राय ऐसी ही कविताएं हैं। इनमें संवाद का भी गहरा उपयोग है। रविकांत में फंतासी का इस्तेमाल करने की भी कोशिश दिखायी देती है। इस शृंखला में इन कविताओं का कवि एक सपने में मारा गया, यात्रा और रीवा कविताएं महत्वपूर्ण हैं। रविकांत मूलतः इलाहाबाद के हैं और इलाहाबाद के रिक्शाचालक बड़ी संख्या में मध्य प्रदेश के पड़ोसी जिले रीवा से आते हैं। 'रीवा' कविता का मूल अनुभव यही है। कविता के प्रारम्भ में रविकांत रीवा का परिचय इस तरह देते हैं कि वह समूह 'इंडिया' के सामानांतर अल्पविकसित गंवई भारत का प्रतीक बन जाता है — *रीवा एक भोला भाला शहर है/जिसकी बांह में/जिन्दगी को, देश को, और भी बहुत सी चीजों को/आगे खींचने की ताकत है/यह शहर/अपने अभावों के प्रति संवेदनशील, किन्तु/अपने गौरव से*

वंचित है।' कवि के 'सपने में यह शहर/छोटा भाई बन कर आता है, और/रात भर, मेरे बगल में उनींदा लेटा रहता है।' पिछले साठ से अधिक सालों में लोकतंत्र, आजादी, स्वराज, स्वतंत्रता और समानता के दावों के बावजूद निम्नवर्गीय, पिछड़े और गंवई भारत का क्या हाल है, कवि बस कुछ पंक्तियों में व्यक्त कर देता है — 'धीरे धीरे भयापे से भरा उसका गला/पतला होने लगा/और वह/सोये हुए लोगों को 'बाबूजी' कहने लगा।' यह वस्तुतः दुख और पीड़ा का समुद्र है जो गले के पतले होने और सोये हुए लोगों को 'बाबूजी' कहने से प्रकट होता है। कवि के लिए 'रीवा' वस्तुतः 'गंवई श्रमिक' है, जिसके प्रति उसके मन में गहरी सहानुभूति है। यह सहानुभूति एक फैंटेसी के माध्यम से व्यक्त होती है, जिसमें एक रिक्शाचालक और सम्पूर्ण रीवा जनपद अभेद्य रूप से एक हो गये हैं — 'जब मेरा पैर/चारपाई के नीचे की ठंडी जमीन पर पड़ा/मेरे कमरे को रौंदता हुआ/ट्रकों का एक काफिला/इस शहर को लादे ले जा रहा था/पता करने पर मालूम हुआ/एक विशालकाय रिक्शेवाले के रूप में/यह शहर/पहले इलाहाबाद के आस पास घूमता है/फिर/बहुत सारे रिक्शों में तब्दील हो जाता है।'।

'यात्रा' भूमंडलीकरण द्वारा खड़ी की गयी ग्लैमरयुक्त स्वर्गीय चमक वाली दुनिया का प्रत्याख्यान है। वाचक एक कठिन और दुर्गम यात्रा में, झील और रेगिस्तान पार करने पर, सफेद पक्षियों से भरी/एकल नयी/झील के उस ओर बसे स्वर्ग में पहुंचता है। वह स्वर्ग की हंसती खिलखिलाती बिन्दास और निर्द्वंद्व स्त्रियों में रमने लगता है। दरअसल ये स्त्रियां फैशन और मनोरंजन उद्योग द्वारा लोकप्रियता और सम्पन्नता के शिखर पर खड़ी स्त्रियों का प्रतिरूप हैं। वे स्वर्ग के दुखों का बयान करती हैं और इस वाचक को स्वर्ग से निकल जाने की सलाह देती हैं — 'जिन नीली मुलायम संगमरमरी आंखों की/आप तारीफ कर रहे हैं/उन्हें आठों पहर/वही सब देखना पड़ता है/जिसे आप नहीं देखना चाहेंगे कभी/यह महक भी हमारी नहीं, स्वर्ग की है।' धरती पर मौजूद इस स्वर्ग के नजदीक ही एक साधारण घर में वाचक नायक की मुलाकात एक साधारण स्त्री से होती है और अंततः वह स्त्री से प्रेम करने लगता है। एक ओर धरती पर मौजूद पूंजीवादी मशीनरी द्वारा उत्पादित प्रदर्शित परीकथाओं में मौजूद परियों सी स्त्रियों की छवियां, दूसरी ओर अपनी सी लगने वाली साधारण स्त्रियां। कविता में स्वर्गीय दिव्य आभा से छविमान स्त्रियों के प्रति कोई वितृष्णा या घृणा नहीं है, बल्कि उनके प्रति करुणा भरी सदाशयता है। यह साधारणता और दुखों में पनपी प्रेमकथा है, जिसमें प्रेयसी प्रेम के क्षणों में भी अपने दुखों के ब्यौरों में डूबती जाती है। प्रेम के शाश्वत प्रसंग के माध्यम से यह वस्तुतः पूंजीवादी समाज के खोखले और आडम्बरयुक्त जीवन का उचित ही नकार है। ऐसी कविताओं से कवि की वैचारिक स्पष्टता का पता चलता है।

इन कविताओं के क्रम में ही संग्रह की एकमात्र लम्बी कविता पढ़ी जानी चाहिए, जिसका शीर्षक है — 'इन कविताओं का कवि एक सपने में मारा गया'। कविता के प्रारम्भ में कवि ने लोककथाओं सा जादुई आख्यान रचा है। कविता वाचक (उर्फ मैं) की एक विदेश यात्रा के दौरान प्रवासी भारतीय कवि के अतिमहत्वपूर्ण काव्य पाठ के विवरण से शुरू होती है। यह एक असाधारण काव्यपाठ था, क्योंकि कवि अभी अभी आश्चर्यजनक समुद्र यात्रा से लौटा था और यहूदियों के पक्ष में बयान देने के कारण उसकी जान को खतरा था। इस खतरे के कारण सुरक्षा कवच की आड़ में उसने कविताओं का पाठ किया। कविता पाठ के दौरान ही कवि गायब हो गया; परिणामस्वरूप कार्यक्रम रोक दिया गया। समय बीतने के बाद प्रसिद्ध कवि से वाचक की मुलाकात अपने ही देश में हुई। इस दरम्यान उसे बहुत सी बातें करने का मौका मिला और उसने कवि के भीतर के मनुष्य को 'मनुष्य होते हुए देखा' दोनों की अगली मुलाकात प्रसिद्ध कवि की जन्मस्थली कास्माबाद में हुई, उसके जन्मदिवस पर। उसके पछतावों और भविष्य की फसलों के सामने — 'कवि अपने पूर्वमुखी घर के/दालान में बैठा/अपने पूर्वजों की आ रही/कड़क यादों में संभलता/सामने के खेतों में तैयार खड़ी/फसलों के आगे सिहर रहा था।'।

आख्यान का यह टांचा अपने आप में महत्वपूर्ण नहीं है और न ही इससे कोई विशिष्ट अर्थ प्राप्त होता है। कविता में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है प्रसिद्ध कवि का गहन आत्मलोचन। आख्यान इसके

लिए पर्याप्त संवेदनात्मक आधार निर्मित करता है और यही इसका महत्व है। कविता में मौजूद गहन संकेतों और प्रसिद्ध कवि के आत्मालोचन से मालूम होता है कि वह मूलतः एक क्रांतिकारी कवि है, जो समय के साथ पूंजीवादी तंत्र द्वारा सोख लिया गया है, उसका बुर्जुवाकरण हो गया है। प्रसिद्ध कवि इससे दुखी है। काव्यपाठ में पढ़ी गयी चार कविताओं के कुछ अंश इसे सहज ही स्पष्ट कर सकते हैं जैसेकि — यह पागलपन मैं करूंगा, क्योंकि/इस समूचेपन में बंद होकर/मेरा दम घुट रहा है/मेरे सपनों का जोश खत्म हो गया है/और मेरी लड़ाई किसी से भी नहीं रह गयी है/संघर्ष करने के लिए भी/अब मुझे इशतहार देना पड़ता है।/मैं बदरंग हो चुका हूँ/और/लोग मेरे चढ़ाव का दिन याद कर/मुझे अब भी पत्र लिख रहे हैं। या इस देश की विकल्पहीन राजनीति के खिलाफ/मैं सबसे हरामखोर प्यादा हूँ/मैं, जो कि अपनी बंदूक पोछ कर/उसे अपने मुहल्ले की धूप में चमकाता हूँ/हां, मैं ही, जो कि/शहर भर में मंडराते भूखे बच्चों को/महज संवेदना से देख कर/अपनी विचारधारा पर गर्व करता हूँ।

प्रसिद्ध कवि की इन कविताओं में मुक्तिबोध जैसा गहन आत्मालोचन है, जो रविकांत की इस कविता को अधिक मर्मस्पर्शी बनाता है। यह आत्मालोचन वाचक से देश में हुई मुलाकात के दौरान निजी बातचीत में भी व्यक्त होता है — ‘पर मैंने एक लम्बी अवधि में दोहरा दोहरा कर/अपनी अपार चतुराई की/स्वाद छायाओं को भोग लिया है।’ दुख के इस क्षण में वाचक ‘एक मनुष्य को मनुष्य होते हुए’ देख रहा था। परंतु यही दुख प्रसिद्ध कवि को कठोर प्रश्नों के जवाब देने से बचा रहा था — ‘क्योंकि कवि अब भावुकता के जिस पत्थर पर खड़ा था/वह किसी तुरूप के इक्के के समान/उसे साफ साफ बचाये लिए जा रहा था।’ वह इस वार्तालाप के दौरान सम्भवतः अपना सबसे कठोर आंतरिक अनुभव बांटता है — ‘मेरे पास सपने बहुत कम थे/मेरी विगत उम्र से बहुत कम/वे सब लगभग एक ही से थे/जैसे एक ही सपने के कई अंग/मुंह, नाक, कान, पैर/जैसे भी थे/छोटे बड़े, दुर्बल, रंगीन/धवल या मलिन सपने वे/सब पूरे हुए।/आज मेरे पास/सिर्फ हकीकतें हैं/मेरे सच हो गये सपनों की/निष्ठुर हकीकतें;/उनके दांचे तो वैसे ही हैं/जैसेकि मैंने चाहे थे/पर रंग जाने किन किन के हैं।’ यह एक तरह से कवि के आत्मालोचन का चरमबिन्दु है। ये सपने निजी हैं या सामाजिक, संकेत स्पष्ट नहीं हैं, परंतु लगता है कि ये निजी सपने थे। निजी सपनों को पूरा करने के लिए ही सम्भवतः वह पूंजीवादी मशीनरी का हिस्सा बना। कविता का शीर्षक ‘इन कविताओं का कवि एक सपने में मारा गया’ बेहद अर्थगर्भी है और कविता के संकेतों को अधिक स्पष्ट बनाता है। वस्तुतः यह हिन्दी कवि समाज की ओर से किया गया आत्मालोचन है। भारत जैसे अर्धपूँजीवादी जनतंत्र में क्रांतिकारी सामाजिक जन संगठनों और जनता की सक्रिय गतिविधियों से दूर होते गये रचनाकार समाज की सच्चाइयों को आत्मस्वीकार के लहजे में प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया गया है। आख्यान में तारतम्यहीनता और बिखराव के बावजूद यह एक मर्मस्पर्शी और प्रभावशाली कविता है। ज्यादातर छोटी कविताएं लिखने वाले रविकांत की कविताओं में यह ‘ऊंची छलांग’ की तरह है।

रविकांत की कविताएं इस अर्थ में विशिष्ट हैं कि उनमें हमारे समय की प्रचलित और स्वीकार्य भंगिमाओं की छायाएं बेहद कम हैं और वे उन खांचों से बाहर हैं जो हमारे समय में अतिप्रचलित हैं। यह भी सहज ही अनुभव किया जा सकता है कि कवि अपने लिए कोई निजी मार्ग भले न ढूंढ पाया हो, परंतु उसकी एक कोशिश उसमें अवश्य है। इन कविताओं में एक सम्भावनाशील युवा कवि का पता मिलता है।

यह भूमंडल की रात, पंकज राग, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, मूल्य : रु. 175.00  
 पहर ये बेपहर का, तुषार धवल, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, मूल्य : रु. 200.00  
 यात्रा, रविकांत, प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, मूल्य : रु. 120.00